असली नक़ली

लड़के को शायद आस-पास कुछ भी रोचक नहीं दिखा तो उसने अब प्रेमिका में रुचि लेते हुए पूछा-

“कैसे हुआ यह सब? शुरू से बताओ।”

“होना क्या था, वही पुरानी कहानी। मम्मी ने बोला बेटी तेरे पापा के मित्र ने तुम्हारे लिए रिश्ते की बात की है। लड़का देखने में अच्छा लगता है। अच्छी नौकरी करता है और परिवार भी ठीक है। देख लेने में तो कोई हर्ज़ नहीं।”

“तुमने क्या कहा?” प्रेमी चौकन्ना हो गया। यहाँ तो प्रेमिका के छिन जाने का डर पैदा हो गया था।

“कहती क्या? वही पुराना बहाना- मैंने नहीं करनी अभी शादी! पर मम्मी मानती कब हैं। पापा का दबाव जो रहता है उन पर,” अपनी माँ को बचाते हुए उसने उत्तर दिया।

“फिर तुम अपने पापा से स्पष्ट क्यों नहीं कह देती?”

“क्या कहूँ? कि तुमसे विवाह करना चाहती हूँ?”

“हाँ क्यों नहीं? तुम क्या मुझ से प्यार नहीं करती?”

“करती हूँ, पर खाली प्यार से तो जीवन नहीं बसर होता। कोई काम-धाम करने वाला लड़का भी तो चाहिए। तुम्हारी तरह बेकार तो नहीं।”

उसकी ख़ुशबू

“हाँ पापा, आज वो आई थी।”

विनय ने एकदम झटके से सिर ऊपर कर तरुण को गुस्से से डाँटा, “क्या कहा? वो आई थी! कह नहीं सकते की मम्मी आईं थी। माँ है तुम्हारी! “वो” नहीं।”

विनय का तसमा बुरी तरह से उलझ चुका था। अब और अधिक देर तक दीवार का सहारा लेकर एक टाँग पर खड़े रहना उसको लगभग असम्भव ही लग रहा था।

“देख क्या रहा है। बैठने के लिए कुछ दे,” विनय के स्वर में अभी भी तीखापन था।

तरुण ब्रेकफास्ट टेबल से कुर्सी उठाने जा चुका था। विनय के मन में अनेकों प्रश्न उठ रहे थे। अचानक तीन साल के बाद बिना किसी पूर्व सूचना के कैसे वो चली आई? अब क्या चाहती है वह? क्यों? क्या कारण रहा होगा उसके यहाँ आने का? और वह भी उसकी अनुपस्थिति में। कहीं तरुण को...! एक डर सा उसके मन पर अधिकार जमाने लगा। उसने तुरंत ही उसे नकार दिया। नहीं ऐसा नहीं हो सकता। तरुण सब समझता है तभी तो जब जज ने उससे पूछा था कि माता-पिता के तलाक़ के बाद किसके साथ रहना चाहोगे तो तरुण ने निःसंकोच विनय का ही तो नाम लिया था।

थप्पड़

“सुन जसपाल आजकल तू बहुत “हीर” गाने लगा है। क्यूँ कोई हीर का क़िस्सा तेरे साथ भी हुआ है क्या?” मौसी ने अपना पहला प्रश्न दागा।

जसपाल मुस्कुरा दिया, “नहीं मौसी, ऐसे ही.. आजकल मन कुछ बेचैन सा रहता है। “हीर” से दिल को

थोड़ा चैन मिलता है।”

“अरे पगले हीर तो तेरी आँखों के आगे नित घूमती है, बस तू ही नहीं पहचानता।” मौसी ने अपना अगला पैंतरा चला। जसपाल समझ नहीं पाया मौसी का इशारा। उसके चेहरे का भाव मौसी ने समझते हुए कहा, “मेरे भोले, अपनी मालती की बात कर रही हूँ।”

जसपाल इसके लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं था। वह भौंचक्का सा रह गया कि मौसी उसके दिल की बात कैसे ताड़ गई। फिर साहस करके उसने कहा, “पर मौसी मालती तो शादी-शुदा है। मैं ऐसा सोच भी कैसे सकता हूँ।”

“ऐसी शादी भी कोई शादी है। बेचारी! दिन-रात अपना समय उस बेकार के मर्द पर बरबाद कर रही है। सुन जसपाल तू ही हिम्मत कर। तू ही मुक्ति दिला इस गाय सी बच्ची को उस राक्षस से।” कहते कहते मौसी का स्वर भर्रा गया।

नन्दू का प्रेम रोग

नन्दू को प्रेमरोग हो गया। यानी कि मर्ज़-ए-इश्क़।

नन्दू की आयु में आमतौर पर यह बीमारी पाई जाती है, या यूँ कहिए यह व्याधि यही सोलह-सत्तरह की अवस्था में सिर उठाती है; फिर सारा जीवन भर इसके परिणाम भुगतने पड़ते हैं। नन्दू की इस प्रेम कहानी की नायिका है- उसके सामने वाले घर के पिछवाड़े वाले घर में रहने वाली एक सुकुमारी कन्या। वैसे उस कन्या को कोई अन्दाज़ा नहीं है कि इधर नन्दू के दिल में आग लग चुकी है। कहने का मतलब है कि अभी तक बात केवल इकतरफ़ा है। वैसे नन्दू पूरी लगन के साथ प्रयत्नशील है कि किसी तरह सम्पर्क स्थापित हो। इसके लिए वह अपने अंतरंग मित्र, नील धोबी की काफी चाटुकारिता कर रहा है आजकल। नील धोबी वास्तव में धोबी नहीं है और न ही दूर-दूर से उसके परिवार वालों का किसी धोबी से सम्बन्ध है। बस यूँ ही इस मुहल्ले की रीति है कि किसी को भी उसके सही नाम से न बुलाया जाए, जैसे कि नन्दू का असली नाम नरेन्द्र है, वैसे ही नील का नाम

अनिल है।

लाश

“अरे, यह तो कोई देसी है। देख तो पायल पहने है।”

“हाय नी! देसी ब्लाँड! ज़रूर ही आवारा है।”

“ऐंवे ही आवारा-आवारा की रट लगा रही है तू! कैसे जानती है तू कि यह आवारा है?”

“देखती नहीं तू इसके ब्लाँड बालों को। देसी औरत और ब्लाँड बाल!” पहली ने अपना तर्क दिया।

“तो क्या बाल रँगने से आवारा हो गयी वो... तू भी तो मेंहदी लगा कर लालो-परी बने घूमती है।” दूसरी ने अपने मन की रड़क को निकालने का अवसर नहीं गँवाया। अचानक ही बहस लड़ाई का रंग लेने लगी थी। अच्छा हुआ कि आदमियों की टोली आ पहुँची।

“पीछे हटो! देखने तो दो क्या हो रहा है,” एक ने अधिकारपूर्वक कहा।

“होना क्या है – तमाशा है! देसी ब्लाँड औंधी

धुत्त होकर सड़क पर लेटी है।" वह अभी तक बालों के रंग पर ही अटकी थी – चटकारे लेते हुए उसने टिप्पणी कर डाली। आदमी ने झुककर पास से देखा। एक झटके से सीधा खड़ा होकर एक कदम पीछे हट गया।

"यह तो मरी हुई है!"

सुबह साढ़े सात से पहले

"बस दो मिनट चैन से मरने भी देते।"

"तुम्हें ही देर हो जाती है, रोज़ भागते-दौड़ते नाश्ता करती हो, गिरते-गिरते सैंडिल पहनती हो। ज़रा आराम से तैयार होना हो तो उठना तो पड़ेगा ही," उसने दलील दी।

कोई उत्तर नहीं मिला। वह जानता था मीना अपने को समेटने का प्रयत्न कर रही है। वह फिर बिस्तर में लौट आया – लेटा नहीं – हैडबोर्ड पर तकिया लगा कर आराम से बैठ गया। उसने मीना के कंधे को सहलाते हुए कहा, "पापा का फोन आया था।"

"क्यों?" मीना का प्रश्न हवा में लटक गया।

कुछ पल राजीव अपने शब्दों को तौलता रहा, “बस वही पुरानी बातें।”

“तुमने क्या कहा?”

“इस बार तो मैंने भी उन्हें चुप करा दिया।”

मीना अब उठ कर बैठ चुकी थी। उत्सुकता से भरी हल्की सी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर खेल रही थी।

“पूरी बात बताओ।”

उसने सच कहा था

आँखों की जलन थोड़ी कम हो चुकी थी। बाहर देखा – सड़क के खंभों से प्रकाश झरने लगा था। मेपल के पीले-लाल होते पत्तों से रोशनी भी रंगीन होने लगती है। इस झरती रंगीन रोशनी के नीचे मांस का बाज़ार लगने लगा था। हाँ, ठीक ही तो है... मांस का बाज़ार... औरत के मांस का बाज़ार!

शहर का यह विरान इलाक़ा पिछली सदी की बन्द पड़ी, जर्जर होती इमारतों के बीच शाम के ढलते-

ढलते अपना चेहरा बदल लेता है। हर नुक्कड़ पर, इन खंडहर बनती ईमारतों के छज्जों के नीचे, हर उम्र, हर रंग की औरतें अपना माल सजा देती हैं। और फिर शुरू हो जाता है धीमी गति से चलती कारों के जलूस का सिलसिला। रोज़ का एक ही नियम है। कारें रुकती हैं, मोल-भाव होता है और कुछ समय के लिए लड़कियाँ गायब होती हैं और फिर से अपने ठिकाने पर तैनात हो जाती हैं... अगला शिकार फाँसने के लिए। दिन के समय आसपास की गलियों के पुराने सीलन से भरे घरों में रहने वाली औरतें अपने पीले से चेहरे लिए अक्सर बाहर बच्चों को स्कूल छोड़ने जाते हुए या फिर वापिस लाते हुए दिखाई देती हैं